ISSN (P) : 0976-7444
(e) : 2395-7247

संगीत एक अनमोल कला

12

डॉ. ओमप्रकाश चौहान *

संगीत वह ललित कला है जिसमें स्वर और लय के द्वारा हम अपने भावों को प्रकट करते हैं। संगीत कला के बारे में हम विस्तृत वर्णन प्रथम अध्याय में कर चुके है किंतु विषय के अनुरूप यहां दोबारा से संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत है।

आम बोलचाल की भाषा में संगीत को केवल गायन समझा जाता है, किन्तु संगीत के अंतर्गत गायन, वादन एवं नृत्य तीनों का समावेश है। गायन, वादन एवं नृत्य तीनों एक–दूसरे के पूरक है। गायन, वादन एवं नृत्य की, वादन, गायन एवं नृत्य की तथा नृत्य, गायन एवं वादन की सहायता करता है। गायन, वादन एवं नृत्य की त्रिवेणी को संगीत कहा जाता है। पं. शारंगदेव ने अपने ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में संगीत की परिभाषा इस प्रकार दी है–'गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं त्रायं संगीतमुच्यते।' अर्थात् गायन, वादन एवं नृत्य इन तीनों का सम्मिलित रूप संगीत कहलाता है। संगीत एक ऐसी ललित कला है जिसकी उत्पति के लिए किसी भौतिक अथवा स्थूल साधनों की आवश्यकता नहीं होती। केवल शब्द अथवा नाद ही इस कला का आधर है।

विभिन्न ललित कलाओं के अभिव्यंजक माध्यम की पृथकता के फलस्वरूप उनके मूल्यांकल में पारस्परिक अन्तर उपस्थित हो जाता है। माध्यम अथवा मूर्त आधार की मात्राा तथा सूक्षमता के अनुसार ही ललित कलाओं की श्रेणियां उत्तम और मध्यम स्तर की होती है। जिस कला में मूर्त आधार जितना कम रहता है, वह कला उतनी ही उच्च कोटि की समझी जाती है। कलाकार अपनी मानसिक अभिव्यक्ति को भिन्न–भिन्न रूपों में प्रकट करता है। कलाकार अपनी मानसिक अभिव्यक्ति को धारण करती है। इन्हीं बाह्म रूपों को धारण करने में कभी एक तो कभी अनेक उपकरणों का सहारा लेना पड़ता है। भौतिक सामग्री तथा उपकरण, उपयोगिता, प्रभाव क्षेत्र आदि के आधार पर हम इन कलाओं का स्थान तथा इनमें संगीत के स्थान को निष्चित कर सकते हैं।

संगीत द्वारा चमत्कारी प्रभाव सम्भव

ललित कलाओं में काव्य एवं संगीत अपने–अपने आन्तरिक गुणों के आधार पर जड़ और चेतन वस्तुओं को अपनी गरिमा से प्रफुल्लित करता है किन्तु काव्य केवल मानव मात्रा की समझ का विषय है वह भी वर्ग विषेश के लिए। काव्य द्वारा न तो चमत्कारी क्रियाएँ दर्शायी जा सकती हैं और न ही यह जड़ वस्तुओं को प्रभावित करता है। काव्यकार अत्याधिक सहजता से शब्दों का चुनाव करके उसे कविता के साँचे में ढालता है किन्तु काव्य को सुनकर मनुष्य मंत्र–मुग्ध भले ही हो जाए पर जीव–जन्तुओं पर उसका प्रभाव लेशमात्र नहीं होता क्योंकि जीव–जन्तु अपनी मानसिक शक्ति के अभाव में काव्य के उन्मेश का आनन्द उठाने में समर्थ नहीं है। इसके

*ऐसो० प्रो०, राजकीय स्नात्कोतर महाविद्यालय सोलन,हि.प्र.

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

विपरीत संगीत कला में ऐसी अद्‌भूत सामर्थ्य है कि मानव तो क्या पशु–पक्षी, जीव–जन्तु तथा वनस्पति आदि सभी हर्षित हो उठते हैं। संगीत की मधुर झंकार से मस्त होकर सर्प और सिंह आदि निर्दयी पशु भी अपनी सुध खो बैठते हैं, घोड़े, बैल आदि अपने गले में बंधी घंटियों से उत्पन्न लय में मग्न होकर चलते रहते हैं। संगीत में इतनी शक्ति है कि संगीत सम्राट तानसेन के दीपक राग गाने से अग्नि प्रज्जवहलत हो उठने की किम्वदन्ती जगत प्रसिद्ध है।

शेर जैसे भयानक, शक्तिशाली और हिंसक पशु पर नियंत्रण करने के विषय में एक घटना प्रसिद्ध है कि लखनऊ के चिड़िया–घर में एक अत्यन्त खुंखार शेर को कोमल गंधर के विशिष्ट प्रकार के प्रयोग से पं. ओंकारनाथ ठाकुर ने वश में कर जानवर की भांति अपनी पूंछ हिलाने लगा। एक और किम्वदन्ती के अनुसार एक बार मृदंग वादक 'कुदऊ सिंह' ने 'गणेश परण' बजाकर प्राण लेने वाले हाथी को भी मृदंग की ध्वनि द्वारा ठीक कर लिया था।

संगीत द्वारा पशु–पक्षियों के स्वास्थ्यवर्धन के उदाहरण भी देखने–सुनने को मिलते हैं। चीन के प्रमुख समाचार पत्रा 'पीपुल्स डेली' की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि तैयुआन के एक डेरी फार्म में कोमल और हल्के संगीत का आयोजन करने से गऊएँ अधिक दूध देने लगती हैं।

पशु–पक्षियों के अलावा पेड़–पौधें एवं वनस्पति आदि पर भी संगीत का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अन्नामलाई विश्वविद्यालय के वनस्पति शास्त्र के प्रमुख डॉ. टी.सी.एन. सिंह द्वारा किए गये अनेक प्रयोग इस बात की पुष्टि करते हैं कि वनस्पति, संगीत से निश्चित रूप से प्रभावित व लाभान्वित होती है। भारतवर्ष में खेतों की बुआई, सिंचाई, कटाई आदि के समय कुछ विशेष धुनों में गीत गाने की परम्परा है। वैज्ञानिकों ने पेड़–पौधें पर इन गीतों के प्रभाव का अध्ययन किया है।

संगीत द्वारा रोगोपचार

संगीत चिकित्सा का प्रावधन प्राचीन काल से ही प्रचार में है। संगीत से चिकित्सात्क संभावनाएं वर्तमान समय में भी प्रमाणित हो चुकी हैं। संगीत के माध्यम से अनेक असाध्य रोगों की चिकित्सा संभव है। कहा जाता है कि भारत के प्रसिद्ध संगीतज्ञ ओंकार नाथ ठाकुर ने इटली के तानाशाह मुसोलिनी जिसे अनिद्रा रोग था को अपने गायन से ही सुला दिया था। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि संगीत मन की तीनों अवस्थाओं चेतन, अवचेतन तथा अचेतन पर प्रभाव डालता है। मानसिक रोगों के उपचार हेतु किए गए सांगीतिक प्रयोग अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुए हैं। मूर्धन्य मनोरोग चिकित्सक पीटर न्यूमेन और माईकल सेन्डर्स ने एक ऐसा मनोरोग चिकित्सालय प्रारम्भ किया, जहां उपचार में संगीत वादन का ही प्रयोग किया जाता है।

राकेश कुमार सक्सेना ने संगीत पत्रिका में एक लेख में विभिन्न रागों द्वारा अनेक रोगों के उपचार को स्वीकारा है। इनके अनुसार 'भैरव' राग कफ सम्बन्धी रोगों के उपचार हेतु, मल्हार, सोरठ व जयजयवन्ती शरीर की उर्जा बढ़ाने व क्रोध को दूर कर मस्तिष्क को शांति प्रदान करने हेतु, आसावरी रक्त, कफ तथा वीर्य सम्बन्धी व्याधियों के निवारण हेतु, भैरवी सर्दी, दमा, इनफ्रयुऐंजा, प्युरिसी, ब्रांकाइटिस व क्षयरोग के निवारण हेतु, गुर्जरी, बागेश्वरी तथा मालकौंस राग दमा व कफ रोगों में, सारंग सिरदर्द व पित्त के रागों में भीमपलासी, मुल्तानी, पटदीप व

© 2015 *Journal Anu Books.* Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

पटमंजरी राग नेत्र रोगों में दरबारी हृदय रोग व गठिया रोगों में हिंडोल तिल्ली रोग में तथा पंचम राग पेट के रोगों के निवारण हेतु उत्तम बताया गया है।

आज की भागदौड़ से भरी जिंदगी में संगीत व्यक्ति को शांति व उर्जा प्रदान करता है। जिसका प्रमाण यह है कि आज बड़े–बड़े कार्यालयों में, प्राईवेट सैक्टर्स में और बड़ी–बड़ी कम्पनियों आदि में भी दिमागी काम करने वाले स्थानों पर धीमी व मधुर आवाज़ में शास्त्रीय वादन, कैसेट्स या सी.डी द्वारा होता रहता है। जिससे काम करने का माहौल व वातावरण तैयार होता है। ऐसी जगहों पर काम करने वाले व्यक्तियों से बात करने पर पाया गया कि इस प्रकार के संगीत से उन्हें मानसिक शांति व ताज़गी का अनुभव होता है, व काम करने के लिए अधिक उर्जा बनी रहती है।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर हम कह सकते है कि काव्य बहुत ही उच्चकोटि की कला है और संगीत की सहगामिनी भी है। किंतु संगीत बिना काव्य के भी जड़–चेतन को आकर्षित कर सकता है, जबकि काव्य बिना संगीत के मननशील, प्रखर बुद्धि वाले तथा साहित्यिक वर्ग तक ही सीमित होकर रह जाता है। अतः प्रत्येक दृष्टि से संगीत अपनी गहनता, सूक्षमता, तथा माधुर्य के बल पर श्रेष्ठ है।

संदर्भ ग्रंथ

1. पं. शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर, व्याख्या और अनुवाकर्त्री सुभद्रा चौधरी, पृ. 12
2. भारतीय संगीत–शिक्षा और उद्देश्य, डॉ. पूनम दत्ता, पृ. 204
3. भारतीय संगीत–शिक्षा और उद्देश्य, डॉ. पूनम दत्ता, पृ. 121
4. भारतीय संगीत–शिक्षा और उद्देश्य, डॉ. पूनम दत्ता, पृ. 116
5. भारतीय संगीत–शिक्षा और उद्देश्य, डॉ. पूनम दत्ता, पृ. 113
6. संगीत, पत्रिका, जुलाई 1993, पृ. 4

© 2015 Joumal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

ISSN (P) : 0976-7444
(e) : 2395-7247

राजस्थानी कला शैली में संस्कृति व धर्म का समानान्तर स्वरूप

13

डॉ0 रीता सिंह*

सदैव से कलाओं को धर्म प्रधान संस्कृति ने ऊर्जा प्रदान की है। "भारतीय जीवन का मूलाधार धर्म है तथा यहाँ की संस्कृति की नीव ही धर्म पर आधारित है।[1] भारत की कलात्मक और वैभवपूर्ण भूमि पर मुगलों का साम्राज्य जितना भी रहा हो किन्तु फिर भी राजस्थान प्रदेश ने अपनी सांस्कृतिक धरोहर को धर्म और कला से आच्छादित रखा है।

नीति और सौन्दर्य भारतीय संस्कृति के बहुमूल्य उपादान रहे हैं। इस कारण कलाकार की भावना इनसे बहुत ही अधिक प्रभावित है।[2] धर्म में जिस शक्ति पर विश्वास किया जाता है वह अलौकिक शक्ति मानी जाती है और यह शक्ति सब कुछ कर सकती हैं।[3] जीवन की अनेक समस्याओं पर धर्म की शक्ति से ही विजय प्राप्त की जा सकती है। धर्म मानव के व्यवहार–आचरण में पवित्रता की भावना भरने का अमोध अस्त्र है किसी भी समाज या देश का मूलाधार धर्म ही होता है।[4] इसी धार्मिक दृष्टि को धारण करके राजस्थान का सांस्कृतिक विरासत लालित्य, प्रतिभा सम्पन्न और गरिमामय हुआ। जो स्वयं सांस्कृतिक एकता का सूचक है और युगों से भारतीय परम्परा से जुड़ा रहा है।[5]

हमारी संस्कृति का आधार ललित कलाएँ होती है। जिस संस्कृति की जड़े जितनी प्राचीनता से निकली हुई होती है वह संस्कृति उतनी ही स्थाई, सारगर्भित और लालित्यपूर्ण होती है तभी तो "राजस्थान में प्राचीन से प्राचीनतम संस्कृति के पुरासाक्ष्य उपलब्ध हुए हैं, जिनके माध्यम से इस भू–क्षेत्र के सांस्कृतिक महत्व को आंका जा सकता है। राजस्थान प्रदेश राजपूत राज्यों के संयोजन से बना राजपूताना है। यहाँ पहाड़ों की कन्दराओं और महत्वपूर्ण नदियों के किनारे प्रस्तरकालीन संस्कृति के उपकरण बहुलता से उपलब्ध हुए हैं। राजस्थान ईसा के तीन हजार वर्ष की ताम्रयुगीन संस्कृति का केन्द्र बिन्दु रहा है। सरस्वती नदी के किनारे ऋग्वेद की रचना एवं सरस्वती घाटी सभ्यता का प्रसार राजस्थान की ही देन है। कुषाणकाल एवं मध्यकाल में मूर्तिकला एवं मन्दिरो के निर्माण की कला ने जो प्रसार पाया, वह अब अनभिज्ञ नहीं रहा है। उत्तर–मध्यकाल में पटचित्रों एवं ताडपत्रों और अन्य पोथी–चित्रों की परम्परा अक्षुण्ण रही है। इन्हीं के माध्यम से राजस्थान में चित्रांकन के पुरासाक्ष्यों की खोजबीन की जा सकती है।[6] इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि राजस्थानी चित्रकला की जड़े बहुत ही प्राचीन और गहरी है। अतः

*(यू0जी0सी0), पी0डी0डब्लू0एफ0, ललित कला विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

राजस्थान की संस्कृति विश्व में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

राजस्थानी संस्कृति और सभ्यता को गौरवान्वित करने का श्रेय यहाँ की चित्रकला को भी रहा है। राजस्थान में चित्रकला की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। राजस्थान प्रदेश में चित्रकला के प्रति अभिरूचि और उसका मौलिक स्वरूप परम्परागत रूप से प्रचलित था। "कोटा जिले के आलणियाँ, दरा, बैराठ, अहाड़ तथा भरतपुर जिले के दर नामक स्थानों के शैलाश्रयों में आदिम मानव द्वारा उकेरे गये रेखांकन और मृण्भाण्डों की कलात्मक उकेरियाँ इस प्रदेश की प्रारम्भिक चित्रण परम्परा को उद्घाटित करती है।[7]

धर्म के समान राजस्थान के सामाजिक सम्प्रदायों में भी 8वीं से 10वी शताब्दी में तत्कालीन राजस्थान की "गुर्जरत्रा" कहलाने वाले दक्षिणी पश्चिमी भाग में भारतीय चित्रकला की "गुजराती शैली, "जैन शैली," "अपभ्रंश शैली" के रूप में विकसित हुई। आगे चलकर इसी परम्परा में "राजस्थानी चित्रकला" का उद्भव और विकास हुआ। 12वीं शताब्दी में कागज के आविष्कार ने ग्रंथों के चित्रण में क्रान्ति उत्पन्न कर दी, क्योंकि कागज पर चित्रकला का अंकन सहजता और विस्तार से हो सकता था।[8] 15वी. शताब्दी भारतीय इतिहास में, "सांस्कृतिक पुनरूत्थान" की शताब्दी के नाम से विख्यात है।

अपने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा एवं संवर्धन करने में राजपूतों का इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रहा हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में श्रृंगार, धर्म, उत्सव, अध्यात्म एवं कलाप्रियता आदि तत्वों से सर्वाधिक राजपूत प्रभावित रहे हैं। राजस्थान के लोक जीवन में ये सभी तत्व आसानी से देखे जा सकते हैं। कालिदास के काव्य और अजन्ता की चित्रकला ने भारतीय चित्रकला और काव्य को सर्वाधिक प्रेरित किया है। प्राचीन राजस्थानी चित्रण परम्परा के सम्बन्ध में विद्वानों के अनुसार, "अजन्ता की चित्रण परम्परा को वहन करने का श्रेय गुहिलवंशीय मेवाड के राजाओं को है। दक्षिणी राजस्थान में मेद्पाट (मेवाड़) वह स्थान है जो प्राचीनकाल से ही सूर्यवंशी राजाओं के हाथ में रहा है और गुप्त साम्राज्य के विघटन के उपरान्त् भी भारतीय संस्कृति की मशाल अपने हाथों में लिए रहा। अतः राजस्थानी चित्रकला की जन्म–भूमि राजस्थान ही हैं और जिनका प्रमुख केन्द्र मेदपाट रहा है। राजस्थानी चित्रकला की पूर्व परम्परा में अनेक सचित्र ग्रंथ, लघु चित्र एवं भित्ति चित्र उपलब्ध होते हैं, जो उसके उद्भव को रेखांकित करने में सहायक हैं। तिब्बत इतिहासकार तारानाथ (16वीं शती) ने मरूप्रदेश (मारवाड) में 7वी. शती में श्री श्रंगधर नामक चित्रकार की चर्चा की है। 15वी. शती. से 12वी. शती तक का काल राजस्थान के इतिहास में महत्वपूर्ण युग था।"[9]

राजपूती सभ्यता और संस्कृति तथा तत्कालीन परिस्थिति का जीवन्त चित्रण राजस्थानी चित्रकला में विशेष दृष्टव्य है। दुर्ग, प्रासाद, हवेलियों, दरबारों, मंदिरों में राजपूती वैभव बारीकी और सुन्दरता से चित्रित किया गया है। राजपूत शैली के चित्रों में कला के साथ साहित्य व संगीत का भी समन्वय हुआ है। चित्र में कृष्ण को नायक मानकर किसी राग का अंकन किया जाता

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

था। चित्र के हाशिये या ऊपरी भाग में तत्सम्बन्धी काव्य लिखा जाता था। राजस्थानी चित्रकला में लाक्षणिकता की प्रमुखता है उसका कारण यह है कि वह मुख्यतः काव्य पर आधारित है। उसमें रामायण, भागवत् पुराण, महाभारत जैसे धार्मिक ग्रंथों से लेकर गीत–गोविन्द तथा कबीर, सूर, मीरा जैसे भक्तिकालीन सन्तों एवं कवियों के भक्तिपूर्ण काव्य–कलाओं का सजीव चित्र दृष्टव्य है। राजस्थान में वैष्णव धर्म एवं वल्लभ सम्प्रदाय का जोर अधिक रहा है। इस कारण राजस्थानी चित्रकला में राधाकृष्ण की मनोरम लीलाओं के आकर्षक चित्र अधिक प्राप्त होते है। राजस्थानी शैली का इतिहास शासन, धर्म और कला तीनों भक्ति में लीन हो, सौन्दर्य दृष्टि लेकर प्रस्फुटित हुई और ऐतिहासिक विरासत में मिला धार्मिक चोला भी चित्रकृतियों का सहज आधार बना।

संस्कृति व समाज के विकास के साथ कला का विकास पूर्णतः जुड़ा हुआ है। यदि इतिहास पर दृष्टि डालते है तो यह प्रमाणित होता है कि आदिकाल से आधुनिक काल तक जैसा समाज, संस्कृति व धर्म रहे है उसी प्रकार कला रही है। समाज, संस्कृति व धर्म के उत्थान पतन के साथ–साथ कला का भी उत्थान–पतन हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ

1. *मारवाड का सांस्कृतिक इतिहास – डॉ. विक्रम सिंह राठौड, राजस्थान ग्रन्थागार, सोजतीगेट, जोधपुर, 1996, पृष्ठ सं० –7*
2. *भारतीय संस्कृति –रतनलाल मिश्र पृष्ठ सं० –191*
3. *सामाजिक नियन्त्रण व सामाजिक परिवर्तन – रवीन्द्रनाथ मुखर्जी पृष्ठ सं०–105*
4. *संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में, – डॉ. उमाशंकर शर्मा, पृष्ठ–6*
5. *राजस्थानी चित्रकला – डॉ. जयसिंह नीरज, पृष्ठ सं०–9*
6. *राजस्थानी चित्रकला डॉ. जयसिंह नीरज, पृष्ठ– 9–10, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1994*
7. *राजस्थान का इतिहास – राजेन्द्र रावत एवं रीता रावत, 1998 जयपुर पृष्ठ संख्या 416*
8. *राजस्थान का इतिहासः– सावित्री धवन तथा विजय कुमारी, 2000, जयपुर, पृष्ठ सं–242*
9. *राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा–डां. जयसिंह नीरज, डॉ. भगवतीलाल शर्मा, पृष्ठ–84, 85, प्रथम संस्करण, प्रकाशन–राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर।*

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.